

# बालकृष्ण चरवीकृत आत्म बोध

With Hindi & English Translations



Published by the International Vedanta Mission



# **Atma Bodha**

of Shri Adi Shankaracharya

(with meaning in Hindi and English)

**Published by**

International Vedanta Mission  
[www.vmission.org.in](http://www.vmission.org.in) / [vmission@gmail.com](mailto:vmission@gmail.com)



ओम् श्री गुरुभ्यो नमः  
अथ श्री शंकराचार्य विरचित

## आत्मबोधः

1. तपोभिः क्षीणपापानां शान्तानां वीतरागिणाम्।  
मुमुक्षूणामपेक्ष्योऽयं आत्मबोधोभिधीयते।।

जिन्होंने अपने पापों को तप के द्वारा क्षीण किया है तथा जिसका मन शान्त और रागादि दोषों से रहित है, ऐसे मोक्ष के इच्छुक साधकों के लिए आत्मबोध ग्रंथ की रचना की जा रही है।

I am composing the Atma-Bodha, this treatise of the Knowledge of the Self, for those who have purified themselves by austerities and are peaceful in heart and calm, who are free from cravings and are desirous of liberation.

2. बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम्।  
पाकस्य वह्निरयज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिध्यति।।

जिस प्रकार अग्नि भोजन पकाने के लिए प्रत्यक्ष साधन है, उसी प्रकार मोक्ष के लिए प्रत्यक्ष साधन ज्ञानमात्र है। बिना ज्ञान के मोक्ष कभी भी सम्भव नहीं होता।

Just as the fire is the direct cause for cooking, so without Knowledge no emancipation can be had. Compared with all other forms of discipline Knowledge of the Self is the one direct means for liberation.

3. अविरोधितया कर्म नाऽविद्यां विनियर्तयेत्।  
विद्याविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत्।।



अज्ञान को नष्ट करने के लिए कर्म साधनरूप नहीं हो सकता क्योंकि कर्म अज्ञान का विरोधी नहीं है। जैसे प्रकाश ही घोर अन्धकार को दूर कर सकता है, वैसे एक मात्र ज्ञान ही अज्ञान का विरोधी होने के कारण उसे नष्ट कर सकता है।

Action cannot destroy ignorance, for it is not in conflict with or opposed to ignorance. Knowledge does verily destroy ignorance as light destroys deep darkness.

#### 4. परिच्छिन्न इवाकाशात् तन्नाशे सति केवलः । स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेऽशुमानिव ॥

अज्ञान के कारण ही आकाशवत् असीम आत्मा सीमाओं से युक्त प्रतीत होती है। अज्ञान का नाश होने पर समस्त भेदों से रहित अपरिच्छिन्न आत्मा उसी प्रकार से प्रकाशित होती है, जैसे बादलों के हटने पर सूर्य प्रकाशित होता है।

The Soul appears to be finite because of ignorance. When ignorance is destroyed the Self which does not admit of any multiplicity truly reveals itself by itself: like the Sun when the clouds pass away.

#### 5. अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्विनिर्मलम् । कृत्या ज्ञानं स्वयं नश्येत् जलं कतकरेणुयत् ॥

अज्ञानसे कलुषित जीव ज्ञानवृत्तिको उत्पन्न करके उसके निरन्तर अभ्यास से शुद्ध हो जाता है। यह ज्ञानवृत्ति जीवको शुद्ध करके स्वतः भी नष्ट हो जाती है, जैसे कतकचूर्ण पानीकी गन्दको साफ करके स्वयं बैठ जाता है।

Constant practice of knowledge purifies the Self ('Jivatman'), stained by ignorance and then disappears itself – as the powder of the 'Kataka-nut' settles down after it has cleansed the muddy water.

#### 6. संसारःस्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः । स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे सत्यसद्भवेत् ॥



राग-द्वेषादि से युक्त यह संसारस्वप्न के समान है। जबतक स्वप्नावस्था में है, तबतक ही यह सत्स्वरूप प्रतीत होता है। किन्तु जग जाने पर झूठा दिखने लगता है।

The world which is full of attachments, aversions, etc., is like a dream. It appears to be real, as long as it continues but appears to be unreal when one is awake (i.e., when true wisdom dawns).

## 7. तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा। यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम्॥

जगत् तबतक सत्य प्रतीत होता है, जबतक उसके अधिष्ठान अद्वय स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता है। जैसे सीपी में चांदी का भ्रम तबतक ही होता है, जबतक सीपी का ज्ञान नहीं होता है।

The Jagat appears to be true (Satyam) so long as Brahman, the substratum, the basis of all this creation, is not realised. It is like the illusion of silver in the mother-of pearl.

## 8. उपादानेऽखिलाधारे जगन्ति परमेश्वरे। सर्गस्थितिलयान्यान्ति बुद्बुदानीव वारिणि॥

सब के उपादान कारण और आधार रूप परमेश्वर में ही यह जगत् उत्पत्ति, स्थिति और लय को उसी प्रकार प्राप्त होता है कि जैसे जल में बुलबुलें आदि नाम-रूप की उत्पत्ति आदि होती है।

Like bubbles in the water, the worlds rise, exist and dissolve in the Supreme Self, which is the material cause and the prop of everything.

## 9. सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः। व्यक्तयो विविधात्सर्वा हाटके कटकादिवत्॥



जगत् के समस्त पदार्थ सच्चित् स्वरूप, नित्य, सर्वव्यापक विष्णु रूपी अधिष्ठान पर उसी प्रकार आरोपित किये जाते हैं, जिस प्रकार स्वर्ण में कंगन इत्यादि आभूषण।

All the manifested world of things and beings are projected by imagination upon the substratum which is the Eternal All-pervading Vishnu, whose nature is Existence-Intelligence; just as the different ornaments are all made out of the same gold.

## 10. यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः। तद्भेदाद् भिन्नवद्भाति तन्नाशे केवलो भवेत्॥

जैसे सर्वव्यापी आकाश भिन्न-2 उपाधि के कारण अनेक प्रतीत होता है, तथा उपाधि के नष्ट होने पर एक हो जाता है, वैसे ही भिन्न-2 उपाधि के कारण अनेक प्रतीत होनेवाली एक ही सर्वव्यापक सत्ता उपाधि के बाधित होने पर एक हो जाती है।

The All-pervading Akasa appears to be diverse on account of its association with various conditionings (Upadhis) which are different from each other. Space becomes one on the destruction of these limiting adjuncts: So also the Omnipresent Truth appears to be diverse on account of its association with the various Upadhis and becomes one on the destruction of these Upadhis.

## 11. नानोपाधिवशादेव जातिवर्णाश्रमादयः। आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत्॥

भिन्न-भिन्न उपाधियों के साथ सम्बन्ध के कारण जाति, वर्ण, आश्रम इत्यादि आत्मा पर आरोपित किये जाते हैं, जैसे जल में रस, रंग आकार आदि आरोपित किया जाता है।

Because of its association with different conditionings such ideas as caste, colour and position are super-imposed upon the Atman, as flavour, colour, etc., are super-imposed on water.



**1 2. पंचीकृतमहाभूतसम्भवं कर्मसंचितम्।  
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ।।**

पूर्वकर्मों द्वारा निश्चित तथा पंचीकृत महाभूतों से निर्मित हुआ यह स्थूल शरीर सुख दुःख के अनुभवों का साधन अथवा भोग का आयतन कहा जाता है।

Determined for each individual by his own past actions and made up of the Five elements – that have gone through the process of “five-fold self-division and mutual combination” (Pancheekarana) – are born the gross-body, the medium through which pleasure and pain are experienced, the tent-of-experiences.

**1 3. पंचप्राणमनोबुद्धि दशेन्द्रियसमन्वितम्।  
अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मांगं भोगसाधनम् ।।**

पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन और बुद्धि- इन सत्रह वस्तुओं के समूहरूप अपंचीकृत महाभूतों से निर्मित यह सूक्ष्म शरीर सुख दुःख के अनुभवों का साधन है।

The five Pranas, the ten organs and the Manas and the Buddhi, formed from the rudimentary elements (Tanmatras) before their “five-fold division and mutual combination with one another” (Pancheekarana) and this is the subtle body, the instruments-of-experience (of the individual).

**1 4. अनाद्यविद्यानिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते।  
उपाधिन्नितयादन्यद् आत्मानमवधारयेत् ।।**

अनिर्वचनीय और अनादि अविद्या कारणशरीर है। आत्मा इन तीनों उपाधियों से मुक्त है – यह निश्चय करो।

Avidya which is indescribable and beginningless is the Causal Body. Know for certain that the Atman is other than these three conditioning bodies (Upadhis).



15. पंचकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः ।  
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादि योगेन स्फटिको यथा ॥

जिस प्रकार स्फटिक अपने समीपस्थ वस्त्र आदि के नीले रंग के कारण नीला प्रतीत होता है, उसी प्रकार शुद्ध आत्मा पांच कोशों की सन्निधि के कारण उसके गुणों से युक्त प्रतीत होने लगती है।

In its identification with the five-sheaths the Immaculate Atman appears to have borrowed their qualities upon Itself; as in the case of a crystal which appears to gather unto itself colour of its vicinity (blue cloth, etc.,)

16. वपुस्तुषादिभिः कोशैः युक्तं युक्त्यावघाततः ।  
आत्मानमन्तरं शुद्धं विविच्यात्तण्डुलं यथा ॥

शुद्धस्वरूप आत्मा को पंचकोशों से युक्तिपूर्वक विवेक के द्वारा वैसे ही पृथक् करना चाहिए, जैसे चावल को उसके छिलकों से पृथक् किया जाता है।

Through discriminative self-analysis and logical thinking one should separate the Pure self within from the sheaths as one separates the rice from the husk, bran, etc., that are covering it.

17. सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते ।  
बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत् ॥

आत्मा यद्यपि सर्वव्यापक है, फिर भी सभी पदार्थों में उसका आभास नहीं होता है, इसका अनुभव शुद्धबुद्धि में ही होता है। जैसे स्वच्छ दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है।

The Atman does not shine in everything although He is All-pervading. He is manifest only in the inner equipment, the intellect (Buddhi): just as the reflection in a clean mirror.



18. देहेन्द्रियमनोबुद्धि प्रकृतिभ्यो विलक्षणम्।  
तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्याद् आत्मानं राजवत्सदा।।

आत्मा को सदैव प्रकृतिके कार्य शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि से विलक्षण सब के साक्षी एवं राजा की भांति ही जानें।

One should understand that the Atman is always like the King, distinct from the body, senses, mind and intellect, all of which constitute the matter (Prakriti); and is the witness of their functions.

19. व्यापृतेष्विन्द्रियेष्व्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम्।  
दृश्यतेऽक्षेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी।।

अविवेकी अज्ञानवशात् मन और इन्द्रियों के कार्यकलापों को सच्चिदानन्द आत्मा पर अध्यस्त कर देते हैं, जैसे आकाश में दीखाई पड़ने वाली नीलिमा को अज्ञानी आकाश का ही रंग मान लेते हैं।

The moon appears to be running when the clouds move in the sky. Likewise to the non-discriminating person the Atman appears to be active when It is observed through the functions of the sense-organs.

20. आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः।  
स्वक्रियार्थेषु वर्तन्ते सूर्यलोकं यथा जनाः।।

आत्मचैतन्य का आश्रय लेकर जड़ होते हुए भी देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि उसी प्रकार से अपनी अपनी क्रियाएं करती हैं, जैसे सूर्य की सन्निधि में समस्त मनुष्य अपने कर्म में प्रेरित होते हैं।

Depending upon the energy of vitality of Consciousness (Atma Chaitanya) the body, senses, mind and intellect engage themselves in their respective activities, just as men work depending upon the light of the Sun.



**21. देहेन्द्रियगुणान्कर्माणि अमले सच्चिदात्मनि ।  
अध्यस्यन्त्यविवेकेन गगने नीलतादिवत् ।।**

अविवेकी अज्ञानवशात् मन और इन्द्रियों के कार्यकलापों को सच्चिदानन्द आत्मा पर अध्यस्त कर देते हैं, जैसे आकाश में दीखने वाली नीलिमा को अज्ञानी लोग आकाश का ही रंग मान लेते हैं।

Fools, because they lack in their powers of discrimination superimpose on the Atman, the Absolute-Existence-Knowledge (Sat-Chit), all the varied functions of the body and the senses, just as they attribute blue colour and the like to the sky.

**22. अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि ।  
कल्प्यन्तेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादि यथाम्भसः ।।**

जैसे अज्ञान के कारण जल की चंचलता आदि उसमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमा की मान ली जाती है, वैसे ही मन के कर्तापन आदि उपाधियां अज्ञानवशात् आत्मा के गुण मान लिये जाते हैं।

The tremblings that belong to the waters are attributed through ignorance to the reflected moon dancing on it: likewise agency of action, of enjoyment and of other limitations (which really belong to the mind) are delusively understood as the nature of the Self (Atman).

**23. रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते ।  
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः ।।**

राग-द्वेष, सुख-दुःख तथा इच्छा आदि मन के अन्तर्गत की विविध वृत्तियों का सुषुप्ति अवस्था में कोई अस्तित्व नहीं होता है, किन्तु बुद्धि के जगने के उपरान्त हुआ करती है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह समस्त विकार बुद्धि के हैं, आत्मा के नहीं।



Attachment, desire, pleasure, pain, etc., are perceived to exist so long as Buddhi or mind functions. They are not perceived in deep sleep when the mind ceases to exist. Therefore they belong to the mind alone and not to the Atman.

**24. प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता ।  
स्वभावः सच्चिदानन्द नित्यनिर्मलतात्मनः ॥**

जैसे सूर्य का स्वभाव प्रकाश स्वरूप, जल का शीतलता, और अग्नि का उष्णता आदि है। वैसे ही आत्मा स्वरूपतः सच्चिदानन्द, नित्य एवं शुद्ध स्वरूप ही हैं।

Just as luminosity is the nature of the Sun, coolness of water and heat of fire, so too the nature of the Atman is Eternity, Purity, Reality, Consciousness and Bliss.

**25. आत्मनःसच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरिति द्वयम् ।  
संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते ॥**

आत्मा का सत्-चित् अंश और बुद्धि-वृत्ति इन दोनों के अविवेकपूर्ण संयोग से 'मैं जानता हूँ' इस वृत्ति की उत्पत्ति होती है।

By the indiscriminate blending of the two – the Existence-Knowledge-aspect of the Self and the thought-wave of the intellect – there arises the notion of "I know".

**26. आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति ।  
जीवः सर्वमलं ज्ञात्या ज्ञाता द्रष्टेति मुह्यति ॥**

चेतन स्वरूप आत्मा में कोई विकार नहीं हो सकते हैं तथा जड़ बुद्धि में जानने का सामर्थ्य नहीं हो सकता है। (चिदाभास रूपी) जीव अपने अज्ञान और अविवेक के कारण अपने को मात्र कर्ता, द्रष्टा आदि मान कर मोहित होता है।



Atman never does anything and the intellect of its own accord has no capacity to experience 'I know'. But the individuality in us delusorily thinks he is himself the seer and the knower.

**27. रज्जुसर्पवदात्मानं जीवो ज्ञात्वा भयं वहेत् ।  
नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातश्चेन्निर्भयो भवेत् ॥**

आत्मा को जीव मानने से व्यक्ति उसी प्रकार से भयभीत होता है, जैसे रस्सी को सांप समझने से। जब व्यक्ति यह जान लेता है कि हम जीव नहीं हैं, किन्तु परमात्मा ही हैं, उसी समय वह समस्त भय से मुक्त हो जाता है।

Just as the person who regards a rope as a snake is overcome by fear, so also one considering oneself as the ego (Jiva) is overcome by fear. The ego-centric individuality in us regains fearlessness by realising that It is not a Jiva but is Itself the Supreme Soul.

**28. आत्मायभासयत्येको बुद्ध्यादीनीन्द्रियाण्यपि ।  
दीपो घटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते ॥**

जैसे दीपक द्वारा घटादि विषय प्रकाशित किये जाते हैं, वैसे ही आत्मा द्वारा बुद्धि और इन्द्रियां आदि करण प्रकाशित होते हैं। बुद्धि आदि स्वतः जड़ होने के कारण न अपने आपको, और न ही अन्य को प्रकाशित कर सकती है।

Just as a lamp illumines a jar or a pot, so also the Atman illumines the mind and the sense organs, etc. These material-objects by themselves cannot illumine themselves because they are inert.

**29. स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयात्मानः ।  
न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मप्रकाशने ॥**

जैसे दीपकको स्वयंको प्रकाशित करने के लिये अन्य दीप की आवश्यकता नहीं है, वैसे ही ज्ञानस्वरूप आत्माको



स्वयंको जानने के लिये अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं है।

A lighted-lamp does not need another lamp to illumine its light. So too, Atman which is Knowledge itself needs no other knowledge to know it.

### 30. निषिध्य निखिलोपाधीन् नेतिनेतीति वाक्यतः। विद्यादेक्यं महावाक्यैः जीवात्मपरमात्मनोः॥

‘नेति नेति’ श्रुति-वाक्यों के द्वारा सभी उपाधियों का निषेध करके महावाक्य द्वारा लक्षित जीवात्म-परमात्मा की एकता को जानें।

By a process of negation of the conditionings (Upadhis) through the help of the scriptural statement ‘It is not this, It is not this’, the oneness of the individual soul and the Supreme Soul, as indicated by the great Mahavakyas, has to be realised.

### 31. आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत्क्षरम्। एतद्विलक्षणं विद्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम्॥

अविद्या अर्थात् कारणशरीर से स्थूलशरीर तक सब शरीर दृश्य है, पानी के बुद्बुदों की भांति नाशवान् है। इससे सर्वथा विलक्षण निर्मलतत्त्व ब्रह्म ‘हम’ है, ऐसा निश्चय करें।

The body, etc., up to the “Causal Body” – Ignorance – which are objects perceived, are as perishable as bubbles. Realise through discrimination that I am the ‘Pure Brahman’ ever completely separate from all these.

### 32. देहान्यत्वान्न मे जन्मजराकाश्यलयादयः। शब्दादिविषयैः संगो निरीन्द्रियतया न च॥

मैं शरीर से विलक्षण हूँ, अतएव जन्म, जरा, क्षय, मृत्यु आदि षड्विकार मुझमें नहीं है। मैं इन्द्रियों से रहित हूँ, अतः शब्दादि विषयों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।



I am other than the body and so I am free from changes such as birth, wrinkling, senility, death, etc. I have nothing to do with the sense objects such as sound and taste, for I am without the sense-organs.

**33. अमनस्त्वान्न मे दुःख रागद्वेष भयादयः ।  
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः इत्यादि श्रुतिशासनात् ।।**

मैं मन नहीं हूँ, इसलिए दुःख, राग, द्वेष और भय इत्यादि भी मेरे नहीं हैं। 'मैं अप्राण, अमन तथा शुद्ध हूँ' यह श्रुति भी बताती है।

I am other than the mind and hence, I am free from sorrow, attachment, malice and fear, for "HE is without breath and without mind, Pure, etc.", is the Commandment of the great scripture, the Upanishads.

**34. निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरंजनः ।  
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः ।।**

मैं निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य, निर्विकल्प, निर्विकार, निराकार नित्यमुक्त और निर्मल हूँ।

I am without attributes and actions; Eternal (Nitya) without any desire and thought (Nirvikalpa), without any dirt (Niranjana), without any change (Nirvikara), without form (Nirakara), ever-liberated (Nitya Mukta) ever-pure (Nirmala).

**35. अहमाकाशयत्सर्वं बहिरन्तर्गतोऽच्युतः ।  
सदा सर्वसम शुद्धो निस्संगो निर्मलोऽचलः ।।**

मैं आकाश की तरह सब के अन्दर-बाहर व्याप्त, अपरिवर्तनशील, सदा और सर्वत्र समान, शुद्ध, असंग, निर्मल और अचल हूँ।



Like the space I fill all things within and without. Changeless and the same in all, at all times I am pure, unattached, stainless and motionless.

**36. नित्य शुद्धविमुक्तैकम् अखण्डानन्दमद्वयम् ।  
सत्यं ज्ञानमनन्त यत्परं ब्रह्माहमेव तत् ॥**

मैं वह ही परब्रह्म तत्त्व हूं, जो नित्य, शुद्ध, मुक्त एक, अखण्ड, आनन्द, अद्वय तथा सत्य, ज्ञान, अनन्त स्वरूप है।

I am verily that Supreme Brahman alone which is Eternal, Pure and Free, One, indivisible and non-dual and of the nature of Changeless-Knowledge-Infinite.

**37. एवं निरन्तराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीतिवासना ।  
हरत्यविद्याविक्षेपान् रोगानिव रसायनम् ॥**

इस प्रकार निरन्तर अभ्यास से उत्पन्न 'मैं ब्रह्म हूं' यह संस्कार अज्ञान और तज्जनित विक्षेप का उसी प्रकार नाश कर देता है जैसे औषधि के सेवन से रोग की निवृत्ति हुआ करती है।

The impression "I am Brahman" thus created by constant practice destroys ignorance and the agitation caused by it, just as medicine or Rasayana destroys disease.

**38. विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेन्द्रियः ।  
भावयेकमात्मानं तमनन्तमनन्यधीः ॥**

एकान्त स्थान में स्थित होकर, सब से रागादि रहित होकर तथा इन्द्रियों को वश में करते हुए अनन्त स्वरूप एक आत्मतत्त्व का अनन्य भाव से चिन्तन करें।

Sitting in a solitary place, freeing the mind from desires and controlling the senses, meditate with unswerving attention on the Atman which is One without-a-second.



**39. आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः ।  
भावयेकेमात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा ॥**

विवेकी पुरुष विवेकपूर्वक सम्पूर्ण दृश्य जगत्को अपनेमें विलीन करके आकाशवत् निर्मल आत्मा का सदा चिन्तन करें।

The wise one should intelligently merge the entire world-of-objects in the Atman alone and constantly think of the Self ever as contaminated by anything as the sky.

**40. रूपवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थवित् ।  
परिपूर्णचिदानन्द-स्वरूपेणावतिष्ठते ॥**

परमार्थवित् सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक जगत्के प्रति सत्यता की बुद्धिको त्यागकर परिपूर्ण चिदानन्दस्वरूपमें अवस्थित हो जाता है।

He who has realised the Supreme, discards all his identification with the objects of names and forms. (Thereafter) he dwells as an embodiment of the Infinite Consciousness and Bliss. He becomes the Self.

**41. ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परे नात्मनि विद्यते ।  
चिदानन्दैकरूपत्वात् दीप्यते स्वयमेव हि ॥**

परमात्मा चिदानन्दस्वरूप होने के कारण उनमें ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय का भेद नहीं है। एक होने के कारण वह स्वयंप्रकाशित है।

There are no distinctions such as "Knower", the "Knowledge" and the "Object of Knowledge" in the Supreme Self. On account of Its being of the nature of endless Bliss, It does not admit of such distinctions within Itself. It alone shines by Itself.

**42. एवमात्मारणौ ध्यान-मथने सततं कृते ।  
उदितावगतिज्वाला सर्वाज्ञानेन्धनं दहेत् ॥**



एवं आत्मा को अरणी बनाकर ध्यान रूप मंथन किया जाता है, इससे ज्ञानाग्नि उत्पन्न होती है, तथा उसकी प्रचण्ड ज्वाला समस्त अज्ञान इन्धनको जलाकर भस्म कर देती है।

When this the lower and the higher aspects of the Self are well churned together, the fire of knowledge is born from it, which in its mighty conflagration shall burn down all the fuel of ignorance in us.

### 43. अरुणेनेव बोधेन पूर्व सन्तमसे हृते । तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥

जैसे अरुणोदय से सूर्योदय से पूर्व ही अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही आत्मसाक्षात्कार से पूर्व ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है।

The Lord of the early dawn (Aruna) himself has already looted away the thick darkness, when soon the sun rises. The Divine Consciousness of the Self rises when the right knowledge has already killed the darkness in the bosom.

### 44. आत्मा तु सततं प्राप्तोऽपि अप्राप्तवदविद्यया । तन्नाशे प्राप्तवद्भाति स्यकण्ठाभरणं यथा ॥

आत्मा नित्य प्राप्त ही है, किन्तु अविद्या के कारण वह अप्राप्तवत् प्रतीत होता है। अविद्या का नाश होने पर आत्मा का वैसे ही अनुभव होता है। जैसे अपने ही गले में पड़े हार को खोया हुआ समझ कर ढूँढ़ने पर ही गले में प्राप्त हो गया हो।

Atman is an ever-present Reality. Yet, because of ignorance it is not realised. On the destruction of ignorance Atman is realised. It is like the missing ornament of one's neck.

### 45. स्थाणौ पुरुषवद्भ्रान्त्या कृता ब्रह्मणि जीवता । जीवस्य तात्त्विके रूपे तस्मिन् दृष्टे निवर्तते ॥



अन्धकार के कारण खम्भे में भूत की प्रतीति की तरह ही अज्ञान के कारण ब्रह्म जीव की तरह प्रतीत होता है। जीव का तात्त्विकरूप जान लेने पर जीवभाव समाप्त हो जाता है।

Brahman appears to be a 'Jiva' because of ignorance, just as a post appears to be a ghost. The ego-centric-individuality is destroyed when the real nature of the 'Jiva' is realised as the Self.

**46. तत्त्वस्वरूपानुभवाद् उत्पन्नं ज्ञानमंजसा।  
अहं ममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादियत्॥**

तत्त्व के अनुभव जनित ज्ञान से 'मैं' और 'मेरा' यह अज्ञान उसी प्रकार शीघ्र ही दूर हो जाता है, जैसे कि दिशाओं के ठीक-ठीक ज्ञान से तत्सम्बन्धी भ्रम।

The ignorance characterised by the notions 'I' and 'Mine' is destroyed by the knowledge produced by the realisation of the true nature of the Self, just as right information removes the wrong notion about the directions.

**47. सम्यक् विज्ञानवान् योगी स्वात्मन्येवाखिलं जगत्।  
एकं च सर्वमात्मानम् ईक्षते ज्ञानचक्षुषा॥**

जिसे सम्यक् अनुभवजन्य ज्ञान हो गया है वह योगी अपने में ही समस्त जगत् को तथा सब को अपने आत्मा की तरह ज्ञानचक्षु के द्वारा देखता है।

The Yogi of perfect realisation and enlightenment sees through his "eye of wisdom" (Gyana Chakshush) the entire universe in his own Self and regards everything else as his own Self and nothing else.

**48. आत्मैवेदं जगत्सर्वम् आत्मनोऽन्यन्न विद्यते।  
मृदौ यद्वद्घटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते॥**

जिस प्रकार से मिट्टी के बने हुए घट आदि मिट्टी ही है, उसी प्रकार से ज्ञानवान् देखता है कि यह समस्त जगत्



हमारी आत्मा ही है, हम से भिन्न कुछ भी नहीं है।

Nothing whatever exists other than the Atman: the tangible universe is verily Atman. As pots and jars are verily made of clay and cannot be said to be anything but clay, so too, to the enlightened soul and that is perceived is the Self.

**49. जीवन्मुक्तस्तु तद्विद्वान् पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत् ।  
सच्चिदानन्दरूपत्वात् भवेद्भ्रमरकीटवत् ।।**

जीवन्मुक्त विद्वान अपनी समस्त पूर्व उपाधियोंका त्याग करके सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म हो जाता है। जैसे कीटक सतत भ्रमर का ध्यान करते हुए भ्रमररूप हो जाता है।

A liberated one, endowed with Self-knowledge, gives up the traits of his previously explained equipments (Upadhis) and because of his nature of Sat-chit-ananda, he verily becomes Brahman like (the worm that grows to be) a wasp.

**50. तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान् ।  
योगी शान्तसमायुक्तः आत्मा रामो विराजते ।।**

योगी पुरुष मोहसागर को पार कर, राग-द्वेष रूपी राक्षसों को मार कर शान्ति से एकरूप होकर आत्मा में ही रमण करता है।

After crossing the ocean of delusion and killing the monsters of likes and dislikes, the Yogi who is united with peace dwells in the glory of his own realised Self – as an Atmaram.

**51. बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वात्मसुखनिर्वृतः ।  
घटस्थदीपवत्स्वस्थः स्यान्तरेव प्रकाशते ।।**

बाह्य अनित्य सुख की आसक्ति का त्याग करके आत्मानन्द में तृप्त जीवन्मुक्त अपने भीतर घट में स्थित दीपक की तरह स्वयं ही देदीप्यमान होता है।



The self-abiding Jivan Mukta, relinquishing all his attachments to the illusory external happiness and satisfied with the bliss derived from the Atman, shines inwardly like a lamp placed inside a jar.

**52. उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैः अलिप्तो व्योमवन्मुनिः ।  
सर्वविन्मूढवत्तिष्ठेत् असक्तो वायुवच्चरेत् ॥**

वह मुनि उपाधियों में स्थित होकर भी आकाश की तरह उनके गुणों से अलिप्त रहता है, तथा सबकुछ जानते हुए भी अज्ञानी की तरह रहते हुए वायुवत् विचरण करता है।

Though he lives in the conditionings (Upadhis), he, the contemplative one, remains ever unconcerned with anything or he may move about like the wind, perfectly unattached.

**53. उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः ।  
जले जलं वियद्वयोमि तेजस्तेजसि वा यथा ॥**

मुनि उपाधि का उन व्यापक तत्त्व विष्णु में विलय हो जाने पर निर्विशेष तत्त्व में उसी प्रकार से प्रवेश कर जाता है, जैसे जल में जल, आकाश आकाश में तथा अग्नि तत्त्व अग्नि में विलीन हो जाता है।

On the destruction of the Upadhis, the contemplative one is totally absorbed in 'Vishnu', the All-pervading Spirit, like water into water, space into space and light into light.

**54. यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम् ।  
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥**

जिससे अधिक इस जगत् में न कोई लाभ है, न उससे बढ़कर कोई सुख है, तथा उससे महान् कोई ज्ञान नहीं है उसे ही ब्रह्म जानों।

Realise That to be Brahman, the attainment of which leaves nothing more to be attained, the blessedness of which leaves no



other blessing to be desired and the knowledge of which leaves nothing more to be known.

**55. यद्दृष्ट्या नापरं दृश्यं यद्भूत्या न पुनर्भयः ।  
यज्ज्ञात्वा नापरं ज्ञेयं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥**

जिसे देखने के उपरान्त और कुछ देखने योग्य नहीं रह जाता है, जो होने के उपरान्त अन्य कुछ बनना शेष नहीं रहता है तथा जिसे जानने के उपरान्त इस जगत् में न कुछ जानने योग्य शेष रहता है, उसे ही तुम ब्रह्म जानो।

Realise that to be Brahman which, when seen, leaves nothing more to be seen, which having become one is not born again in this world and which, when knowing leaves nothing else to be known.

**56. तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्ण सच्चिदानन्दमद्वयम् ।  
अनन्तं नित्यमेकं यत् तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥**

जो उपर भी है, नीचे भी है, जो सच्चिदानन्द, अद्वय अनन्तस्वरूप नित्य, एकमात्र पूर्णतत्त्व है, उसे तुम ब्रह्म जानों।

Realise that to be Brahman which is Existence-Knowledge-Bliss-Absolute, which is Non-dual, Infinite, Eternal and One and which fills all the quarters – above and below and all that exists between.

**57. अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदान्तैर्लक्ष्यतेऽद्वयम् ।  
अखण्डानन्दमेकं यत् तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥**

जिसे वेदान्तशास्त्र निषेध लक्षणा से लक्षित करते हैं, उन एक, अद्वय-अखण्डानन्द स्वरूपतत्त्व को ही ब्रह्म जानों।

Realise that to be Brahman which is Non-dual, Indivisible, One and Blissful and which is indicated in Vedanta as the Immutable Substratum, realised after the negation of all tangible objects.



58. अखण्डानन्दरूपस्य तस्यानन्दलवाश्रिताः ।  
ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवन्त्यानन्दिनोऽखिलाः ॥

उस अखण्ड आनन्दस्वरूप, ब्रह्मानन्द के लवलेश पर ही ब्रह्मा आदि देवता आश्रित हैं और वे सभी अपनी अपनी शक्ति के अनुपात में ही उस आनन्द का उपभोग कर पाते हैं।

Deities like Brahma and others taste only a particle, of the unlimited Bliss of Brahman and enjoy in proportion their share of that particle.

59. तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्यितः ।  
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरियाखिले ॥

समस्त पदार्थ ब्रह्म के द्वारा ही व्याप्त हैं। तथा समस्त चेष्टाएं ब्रह्म के कारण ही सम्भव हैं। अतः ब्रह्म समस्त पदार्थों में उसी तरह व्याप्त है, जैसे दूध में मक्खन।

All objects are pervaded by Brahman. All actions are possible because of Brahman: therefore Brahman permeates everything as butter permeates milk.

60. अनण्वस्थूलमह्रस्वम् अदीर्घमजमव्ययम् ।  
अरूपगुणवर्णरहितं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥

जो न सूक्ष्म है, न स्थूल, न छोटा है, न बड़ा। जिसमें न जन्म है, न विकार व परिवर्तन। तथा जो रूप, गुण, वर्ण और नाम से रहित है। उसे तुम ब्रह्म जानो।

Realise that to be Brahman which is neither subtle nor gross: neither short nor long: without birth or change: without form, qualities, colour and name.

61. यद्भासा भास्यतेऽर्कादि भास्यैर्यत्तु न भास्यते ।  
येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥



जिसके प्रकाश से सूर्य आदि प्रकाशित होते हैं। किन्तु जो किसी अन्य के प्रकाश से प्रकाशित नहीं होता है। जिससे यह सब कुछ प्रकाशित होता है उसे तुम ब्रह्म जानो।

That by the light of which the luminous, orbs like the Sun and the Moon are illuminated, but which is not illumined by their light, realise that to be Brahman.

## 62. स्वयमन्तर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत्। ब्रह्म प्रकाशते वह्निं प्रतप्तायसपिण्डवत्॥

ब्रह्म सम्पूर्ण जगत्के अन्दर-बाहर व्याप्त होकर स्वयंको ऐसे प्रकाशित करता है जैसे तपे हुए लोहे के गोलेमें अग्नि।

Pervading the entire universe outwardly and inwardly the Supreme Brahman shines of Itself like the fire that permeates a red-hot iron-ball and glows by itself.

## 63. जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न किंचन। ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका॥

ब्रह्म जगत् से अत्यन्त विलक्षण है। तथा ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है। यदि ब्रह्म से भिन्न कुछ प्रतीत होता है तो वह मिथ्या ही है।

Brahman is other than this, the universe. There exists nothing that is not Brahman. If any object other than Brahman appears to exist, it is unreal like the mirage.

## 64. दृश्यते श्रूयते यद्यद् ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत्। तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्॥

जो कुछ भी यहां देखा व सुना जाता है वह ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है। तत्त्व का ज्ञान हो जाने पर यह जगत् अद्वय, सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म ही प्रतीत होने लगता है।



All that is perceived, or heard, is Brahman and nothing else. Attaining the knowledge of the Reality, one sees the Universe as the non-dual Brahman, Existence-Knowledge-Bliss-Absolute.

**65. सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञाचक्षुर्निरीक्षते ।  
अज्ञानचक्षुर्नेक्षते भास्यन्तं भानुमन्धवत् ॥**

यद्यपि आत्मा सर्वव्यापी, सच्चित्स्वरूप है। किन्तु वह ज्ञानचक्षु से ही जानी जाती है। अज्ञान से आवरित चक्षु के द्वारा उसे देखा नहीं जा सकता। जैसे अन्धा प्रकाशित हो रहे सूर्य को नहीं देख सकता।

Though Atman is Pure Consciousness and ever present everywhere, yet It is perceived by the eye-of-wisdom alone: but one whose vision is obscured by ignorance he does not see It; as the blind do not see the resplendent Sun.

**66. श्रवणादिभिरुद्दीप्त ज्ञानाग्निपरितापितः ।  
जीवस्सर्वमलान्मुक्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयम् ॥**

शास्त्र के श्रवणादि से ज्ञानाग्नि को प्रज्ज्वलित कर जीव समस्त अज्ञानजनित मलिनतासे मुक्त हो स्वर्ण की तरह प्रकाशित होता है।

The 'Jiva' free from impurities, being heated in the fire of knowledge kindled by hearing and so on, shines of itself like gold.

**67. हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभानुस्तमोपहृत् ।  
सर्वव्यापी सर्वधारी भाति भासयतेऽखिलम् ॥**

जिस समय हृदयाकाश में उदित होने वाला ज्ञान का सूर्य अज्ञानान्धकार का नाश करता है, तब सर्वव्यापक तथा सर्वाधार ब्रह्म स्वयं प्रकाशित होता है, तथा अखिल जगत् को भी प्रकाशित करता है।



The Atman, the Sun of Knowledge that rises in the sky of the heart, destroys the darkness of the ignorance, pervades and sustains all and shines and makes everything to shine.

**68. दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं  
शीतादिहन्नित्यसुखं निरंजनम् ।  
यस्स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः  
स सर्वयित्सर्वगतोऽमृतो भवेत् ॥**

जिस व्यक्ति ने सब कर्मों को भली भांति त्याग कर दिया है तथा जो देश, काल, और दिशा पर अवलम्बित न होकर सर्वव्यापक, सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्वों से परे, नित्य आनन्दस्वरूप और निरंजन अपने आत्मरूपी तीर्थ का सेवन करता है, वह सर्वज्ञ और सर्वव्यापक हो जाता है और अमृतत्व को प्राप्त करता है।

He who renouncing all activities, who is free of all the limitations of time, space and direction, worships his own Atman which is present everywhere, which is the destroyer of heat and cold, which is Bliss-Eternal and stainless, becomes All-knowing and All-pervading and attains thereafter Immortality.

॥ ओम् तत्सत् ॥

.....

International Vedanta Mission

[www.vmission.org.in](http://www.vmission.org.in) / [vmission@gmail.com](mailto:vmission@gmail.com)